भारतीय संविधान सभा में मानवाधिकार विमर्श

प्रभात कुमार सिंह
शोध छात्र
राजनीति विज्ञान विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

भारतीय संविधान में मानवाधिकारों का सृजन भारतीय संविधान सभा में उपस्थित विद्वानों के मतों से भी हुआ। संविधान सभा में हुये वाद–विवाद के मिश्रण से जो विचार या मत सामने आये उन्होंने मानवाधिकारों का सृजन किया। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने 23 दिसम्बर 1946 को मूल अधिकारों का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। 22 जनवरी 1947 को इस प्रस्ताव को अंगीकृत किया गया। इस प्रस्ताव में भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य बनाये जाने, भारत के लोगों को सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति विश्वास धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता तथा भारत को विश्व समुदाय में उचित स्थान प्राप्त होने, विश्व शान्ति में भारत का सहयोग होने और भारत के लोगों के कल्याण आदि को सम्मिलित किया गया।[1] इस प्रस्ताव की बहस में कई लोगों ने भाग लिया और अन्ततः मूल अधिकारों को संविधान के भाग–3 में सम्मिलित किया गया। इस भाग में दिये गये अधिकार से लगभग सारे संविधान सभा सदस्य सहमत थे। क्योंकि भाग–3 में दिये गये अधिकार मानव की मूलभूत आवश्यकता थी। इस कारण इसमें दिये गये अधिकारों का विरोध कम हुआ। परन्तु कुछ अधिकार जो उस समय नहीं दिये जा सकते थे। क्योंकि राज्य तभी ऐसे अधिकार देने में असमर्थ था तो ऐसे अधिकारों को संविधान में भाग–4 में सम्मिलित किया गया। भाग–4 में अधिकारों को केवल नीति का विषय बनाने से मानवाधिकारों का सम्पूर्ण पक्ष भारत में उजागर नहीं हो पाता है। हालांकि न्यायालय में निर्वचनात्मक रूप ने इस कमी को कुछ हद तक दूर किया है। नेहरू द्वारा प्रस्तावित मूल अधिकारों के प्रस्ताव के समर्थन में डॉ0 एस0राधाकृष्णन ने कहा कि मानव स्वतन्त्रता को संरक्षित रखा जाना चाहिए। एन0वी0 गाडगिल ने कहा कि प्रस्ताव में उल्लिखित विभिन्न स्वतन्त्रताओं के मध्य सुसंगतता स्थापित की जानी चाहिए। श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने इस प्रस्ताव को सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता का एक कदम बताया। प्रस्तावना में दिये गये शब्द 'व्यक्ति की गरिमा' की व्याख्या संविधान प्रारूप समिति के एक सदस्य के0एम0 मुन्शी ने बताया कि 'व्यक्ति की गरिमा' शब्द हीगल के उस सिद्धान्त का खण्डन करता है कि राज्य कोई अलौकिक शक्ति है जिसका लक्ष्य व्यक्ति से स्वतन्त्र रहकर और व्यक्ति को पीछे छोड़कर मात्र अपने अस्तित्व को बनाए रखना है। वास्तव में व्यक्ति राज्य के हाथों मे कोई उपकरण नही है, राज्य व्यक्ति के लिए है और उसका कर्तव्य यह है कि यह प्रत्येक नागरिक का आदर करके और ऐसी परिस्थितियों का सृजन करें जिसमें हर व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक अपना विकास कर सके।[2]

मूल अधिकार तथा नीति निदेशक तत्वों को राजनैतिक अधिकार और सामाजिक अधिकार के रूप में विभाजित किये जाने के पक्ष तथा विपक्ष में सोमनाथ लाहिरी, श्री के0 सन्यानम, श्री राधाकृष्णन आदि ने बहस में भाग लिया, अन्ततः पं0 गोविन्द बल्लभ पन्त ने कैबिनेट मिशन के सुझावानुसार 24 जनवरी 1947 को इस समस्या के व्यावहारिक समाधान के लिए एक सलाहकार समिति का प्रस्ताव पेश किया। इस प्रस्ताव के आधार पर 27 फरवरी 1947 को सरदार बल्लभ भाई पटेल को सलाहकार समिति का अध्यक्ष विर्वाचित किया गया। वाद में इस समिति ने उपसमितियों का कठन किया। उनमें से एक समिति मूल अधिकारों से सम्बन्धित थी। जे0बी0 कृपलानी इसके अध्यक्ष निर्वाचित किये गये। श्री के0एम0 मुन्शी, श्री एम0आर0 मशानी प्रो0 के0टी0 शाह, अम्बेडकर जैसे व्यक्ति बहत् सामाजिक कार्यक्रम के समर्थक थे और ये सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को मूल अधिकारों के साथ सम्मिलित करने के पक्ष में नहीं थे।[3] इसीलिए उन्होंने नीति–निदेशक सिद्धान्तों की बाद योग्य बनाने के लिए निश्चित समय सीमा पर बल दिया। जे0वी0 कृपलानी की अध्यक्षता में कार्य कररही मूल अधिकारों से सम्बन्धित उपसिमिति का पहला अधिवेशन 24 फरवरी 1947 को वी0एन0 राव, के0टी0 शाह, के0एम0 मुन्शी, डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर, हरनाम सिंह तथा कांग्रेस विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गयी सूची के मजौदे के साथ–साथ विभिन्न टिप्पणियों और अधिकारों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा के लिए हुआ। यह सूची अत्यन्त लम्बी और विस्तृत थी, क्योंकि इनमे भारत एवं अन्य स्रोत से लिए गये सिद्धान्तों की व्याख्या तथा नकारात्मक एवं सकारात्मक अधिकारों को समाविष्ट किया गया था। संविधान निर्माताओं के समक्ष चुनौती थी कि कैसे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक व्यवस्था का बीच सन्तुलन हो। संविधान निर्माताओं द्वार निर्णय लियागया कि मौलिक अधिकार बाद योग्य होने चाहिए। परन्तु इनकी सीमा भी निर्धारित की गयी।

संविधान सभा में कुछ सदस्य ऐसे भी थे जिन्होंने एक समाजवादी राज्य की विशेषता तथा गांधीवादी विचार की संविधान के मौलिक अधिकारों में सम्मिलित करने की बात की जैसे – ग्राम्य जीवन और आर्थिक व्यवस्था के लिए संशोधन, गांव के संगठन की पंचायती व्यवस्था, सरकारी, उत्तरदायित्व पर कुटीर उद्योग को प्रोत्साहन, गोहत्या का निषेध, पशुपालन और कृषि तरीकों में सुधार इत्यादि।[4] परन्तु इनमें से ज्यादातर संशोधनों की इनके प्रवर्तकों द्वारा ही समर्थन नही किया गया। परिणाम स्वरूप संविधान सभा ने राजय के नीति निदेशक सिद्धान्तों के रूप में इन्हें संविधान के भाग–4 में समाविष्ट कर दिया। इनको भाग–3 में सम्मिलित न करने का एक कारण यह भी था कि इनमें से कुछ अधिकार एक धर्म से जुड़े हो जैसे गोहत्या निषेधा। तात्कालिक परिस्थितियों में राज्य के लिए यह कार्य असम्भव था इसलिये इनको संविधान के भाग 4 में रखा गया। भारतीय संविधान द्वारा भारत को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुये डॉ0 राधाकृष्णन ने कहा है कि ''धर्मनिरपेक्ष होने का तात्पर्य न तो धर्म के विरूद्ध होना है और न धार्मिक दृष्टि से संकुचित होना, वरन् अत्यन्त आध्यात्मिक होना है। इस सबका तात्पर्य केवल यही है कि वह अर्थात भारत देश सब व्यक्तियों को आर्थिक निष्ठा का आदर करता है।[5] भारत इस धर्म निरपेक्षता का सिद्धान्त अपनाने का लक्ष्य व्यक्ति के धार्मिक अधिकार को और अधिक स्वतन्त्र करना था। संविधान सभा में डॉ0 अम्बेडकर ने नीति निदेशक सिद्धान्तों में दिये गये अधिकारों की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुये यह कहा था कि 'राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त उन आदेश पत्रों के समान हैं जिन्हें पहले ब्रिटिश सरकार गर्वनर जनरल को या उप निवेशों के गर्वनरों को भेजा करती थी। इस समय इन्हीं आदेश पत्रों का नाम बदलकर उन्हें राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्त करना आरम्भ कर दिया गया है। अन्तर केवल इतना है कि अब नीति निदेशक सिद्धान्त राज्य की कार्यपालिका और व्यवस्थापिका को दिया गया अनुदेश पत्र है। मैं समझता हूँ कि हम सबको इसका आहट कला चाहिए जहां कही सामान्य शब्दों में शक्ति व्यवस्था और श्रेष्ठ शासन के लिए अधिकार सौपे जाते है यह भी आवश्यक है कि उस अधिकार के साथ –साथ कुछ निर्देश हो जिनके अनुसार अधिकारों का प्रयोग होना है।''[6] के0टी0 शाह जो कांग्रेस के

गरम दल से सम्बन्ध रखते थे, ने संविधान सभा में कहा था कि 'संविधान के अध्ययन के अनुसार इसका लक्ष्य सामाजिक आर्थिक परिवर्तन नहीं बल्कि राजनीतिक परिवर्तन था। डा0 अम्बेडकर ने भी यह बात स्वीकारते हुये कही कि ''26 जनवरी 1950 का हम विरोधाभासों के जीवन में प्रवेश कर रहे है। राजनीति के क्षेत्र में हम समानता की बात करते हैं लेकिन सामाजिक व आर्थिक क्षेत्र में असमानता की। जितनी जल्दी हो सके हमें इस विरोधाभास को दूर करना चाहिए।'[7]

संविधान सभा में भाषण करते हुये जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि ''इस सभा का प्रथम कार्य एक नये संविधान के माध्यम से भारत को स्वतन्त्र कला, भूखी जनता को रोटी एवं नंगे लोगों को कपड़ा उपलब्ध कराना तथा प्रत्येक भारतीय को उसकी नमता के अनुरूप अपना निकास करने के पूर्ण अवसर प्रदान करना है।'[8]

संविधान सभा में नेहरू ने कहा था कि इस विश्व व देश में तब तक कोई स्वतन्त्रता नही होगी जब तक एक भी मानव अस्वतन्त्र है। तब तक कोई पूर्ण स्वतन्त्रता नही आ सकेगी जब तक भुखमरी, बल्बों का अभाव, जीवन की आवश्यकताओं की अपूर्णता और प्रत्येक मानव के विकास के लिए अवसर अपर्याप्त है।'[9]

निष्कर्ष:

अधिकारों की व्यवस्था संविधान को सबके लिए (जनसमुदाय के लिए) विधान बना देती है तथा यह सर्वस्वीकृत हो जाती है। मानवाधिकारों की चर्चा विश्व के समस्त देशों के संविधान में की गयी है। चाहे वहाँ कोई भी शासन व्यवस्था क्यूँ न हो। ऐसा करना इसलिये भी जरूरी हो जाता है क्योंकि कोई भी शासन व्यवस्था अपना स्थायित्व चाहती है। और शासन व्यवस्था स्थायी तभी होती है। जब वहाँ की जनता का उसे समर्थन प्राप्त हो। समर्थन प्राप्त करने के लिए ही शासन व्यवस्था अपने यहाँ नागरिकों के अधिकारों की व्यवस्था करता है। ये अधिकार प्रभावी रूप में भी हो सकते है। व साथ ही साथ लक्षित रूप में भी हो सकते है। वर्तमान समय में विश्व के अधिकांश देशों ने मानवाधिकारों को अपने संविधान में दोनों रूपों में अर्थात् प्रभावी व लक्षित रखा है। जिस देश की शासन व्यवस्था संविधान में दिये लक्षित उद्देश्यों को प्रभावी करता है वह देश समाज के उत्तम स्वरूप को प्राप्त करता जाता है। या फिर यूँ कहें की वह देश विकसित होता जाता है। संविधानों में अधिकारों की व्यवस्था देश में सुशासन की अवस्था की ओर अग्रसर करती है।

सन्दर्भ

1. लक्ष्मीकान्त, एम0 : भारत की राजव्यवस्था ; मैक्ग्राहिल एजुकेशन प्रा0लि0, 2014 पृ0सं0 2.1–2.2।
2. सईद, एस0एम0 : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था ; भारत बुक सेन्टर, लखनऊ 2011, पृ0 सं0 15।
3. नारंग, ए0एस0 : भारतीय शासन एवं राजनीति; गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2011–2012, पृ0सं0–21।
4. वही, पृ0सं0–11–18।
5. vle.du.ac.in/mod/book/print.php?id=12480?&chapterid=26052
6. लक्ष्मीकान्त, एम0 : भारत की राजव्यवस्था ; मैक्ग्राहिल एजुकेशन प्रा0लि0, 2014 पृ0सं0 8.1।
7. जोशी, एम0सी0: गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा अम्बेडकर; अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015 पृं0सं0 103–142।
8. वही, पृ0 सं0 53–57।
9. वही, पृ0सं0 38–76।